



पतञ्जलि योगशास्त्र : एक चिन्तन

□ डा. वसन्त गजानन्द राहुकर

एम.ए., पी-एच.डी.

(रीडर, संस्कृत उच्च अध्ययन केन्द्र, पूना विश्वविद्यालय)

कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! तपस्वी, ज्ञानी और कर्म करने वाले की अपेक्षा योगी श्रेष्ठ है। अतः तू योगी बन ।^१

योगशास्त्र के इस सर्वोपकारित्व को लक्ष्य में रखकर मुमुक्षु साधकों को इसका सम्यग् परिज्ञान कराने के लिए आचार्य पतञ्जलि ने भारतीय वाङ्मय का गहराई से अनुशीलन-परिशीलन कर अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा और ज्ञान के अनुभव के आधार पर योग-सूत्रों की रचना की। आज योगशास्त्र को संस्कृत वाङ्मय और भारत की एक अद्वितीय देन के रूप में माना जाता है। डॉक्टर कर्णसिंह के शब्दों में^२ मानव के मस्तिष्क, मन, बुद्धि आदि का कार्य किस प्रकार चल रहा है, यह आज तक एक पहेली के रूप में रहा है। प्रस्तुत योगशास्त्र में भारत में प्राचीनकाल से अत्यधिक गवेषणा हुई है परन्तु आधुनिक विज्ञानशास्त्र के परीक्षण-प्रस्तर पर उस गवेषणा का परीक्षण एवं सम्वाद होना अपेक्षित है। कुण्डलिनी-जागरण और ध्यानातीत-समाधिमागं प्रभृति विषयों पर भी प्रायोगिक स्तर पर संशोधन होना बहुत ही आवश्यक है।

पातञ्जल योगदर्शन को हम भारतीय मनोविज्ञान कह सकते हैं। शिक्षा क्षेत्र में मनोबलवर्धन की दृष्टि से योग, आसन, आदि का प्रचार उपयुक्त है, इसलिए उसका प्रचार होना चाहिए। प्राचीन महर्षियों के अभिमतानुसार मानव 'अमृतस्य पुत्र' है किन्तु पतित नहीं। अतः योग-मार्ग से प्राण-शक्ति और ज्ञानमार्ग से अवधानशक्ति जागृत करके मानव के हित के लिए इन सुप्त शक्तियों का विकास आवश्यक है। योग को हम शास्त्र भी कह सकते हैं और कला भी। शरीर-पुष्टि अथवा रोग-मुक्ति तक ही योग सीमित नहीं है और न विभूति सम्पादन करना तथा चमत्कार से जन-मानस को चमत्कृत करना ही योग है। योगशास्त्र तो आत्मा की ऊर्ध्वमुखी विजय यात्रा का शास्त्र है। मानव के शरीर, मन, सुप्त शक्तियाँ, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, नैतिक जीवन और आत्म-जागरण के कार्य में वृद्धि करना योगशास्त्र का उद्देश्य है। इसे हम मानव के विकास का शास्त्र भी कह सकते हैं क्योंकि यह हमें दिव्य व भव्य पथ पर बढ़ने की प्रबल प्रेरणा प्रदान करता है।

पातञ्जल योगदर्शन अद्वैतवेदान्त का परिपूरक शास्त्र है। एक ही ब्रह्मविद्या के ये दो रूप हैं। इसमें प्रथम उपपत्त्यात्मक है और द्वितीय प्रयोगात्मक है। कुछ चिन्तकों की यह धारणा है कि ब्रह्मसूत्र में जो योग शब्द व्यवहृत हुआ है वह पातञ्जल योगशास्त्र ही है।^३ उन चिन्तकों में प्रमुख चिन्तक वाचस्पति मिश्र हैं; परन्तु यह धारणा भ्रान्त है। वेदान्तसूत्रों के अनुसार द्वैत अनुकूल योग सम्भव नहीं है। उपनिषदों में प्रतिपादित योग का चरम उत्कर्ष भगवद्गीता में निहारा जा सकता है। योग का अर्थ चित्तवृत्तिनिरोध है। इस निरोध का वर्णन श्रीकृष्ण ने अर्जुन के उद्बोधन के लिए किया है। भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में 'ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे' शब्द जो प्रयुक्त हुआ है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस वेदोक्त ब्रह्मविद्या के योगशास्त्र रूप अंग को सूत्र रूप में प्रतिबद्ध कर पतञ्जलि ने उसे एक विशिष्ट शास्त्रीय रूप दिया है। पतञ्जलि ने समाधि-पाद, साधना-पाद, विभूति-पाद और कैवल्य-पाद के रूप में योगशास्त्र का विवेचन किया है।

पतञ्जलि ने यम-नियमों का सूक्ष्म विवेचन किया है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण विश्लेषण है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह—ये पाँच यम; और शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान—ये

पाँच नियम निश्चित किये गये हैं। इन यम और नियमों में व्यक्ति की उन्नति और समाज के समन्वयात्मक सहयोग की धारणा पतञ्जलि के अन्तर्मन में है। पतञ्जलि के समय में उपलब्ध योगशास्त्र विषयक सम्बन्धी साहित्य का अनुशीलन योगसूत्रों में स्पष्ट रूप से दीखता है। अभ्यास-वैराग्य से निरोध^{१०} होता है। पतञ्जलि के इस विधान का समर्थन भगवद्गीता से भी होता है।^{११}

भारत में वेद आदि के निर्माण के पश्चात् मानव की जिज्ञासा वृत्ति से ही षडार्थों एवं षड्दर्शन-शास्त्रों का निर्माण हुआ है। इस विराट् विश्व की रमणीयता एवं भव्यता को निहार कर मूर्धन्य मनीषियों के अन्तर्मन में जिज्ञासाएँ उद्बुद्ध हुईं। ऋग्वेद^{१२} के शब्दों में कहें तो 'यह विविध सृष्टि जिससे निर्मित हुई, तथा जिन्होंने धारण की और जिनमें इसका उपसंहार होता है, उस परम व्योम के निवासी परमेश्वर हैं। उनको यह किस प्रकार सम्भव हुआ होगा, यह कहना कठिन है, परन्तु प्रस्तुत जिज्ञासावृत्ति ने ही षट्-दर्शन को जन्म दिया।'^{१३}

वैशेषिकदर्शन के आद्यप्रणेता कणाद ने षट्पदार्थों का निरूपण किया है।^{१४} न्यायदर्शन के निर्माता गौतम ने 'अभाव' नामक सातवें पदार्थ का वर्णन किया है। जैसे द्रव्य-गुण आदि छह पदार्थ इन्द्रियों से गोचर होते हैं उसी प्रकार 'अभाव' भी इन्द्रिय द्वारा ज्ञात होने वाला पदार्थ है। इस अभाव के प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव नामक चार प्रकार हैं। अभाव पदार्थ की सिद्धार्थ उसके प्रतियोगी पदार्थ के अस्तित्व की आवश्यकता होती है। घट और घटाभाव ये परस्पर प्रतियोगी पदार्थ हैं। शशशृंग का कहीं पर भी अस्तित्व नहीं है अतः उसका अभाव न्यायशास्त्र के अनुसार पदार्थ नहीं कहला सकता। इसके उपरान्त विचार-विकास के क्रम में सांख्यदर्शन आता है। इसमें तत्त्वज्ञान विचारों की उत्क्रान्ति स्पष्ट रूप से दृग्गोचर होती है। न्याय-वैशेषिक दर्शन में आत्मा और मन का समावेश पदार्थों में किया गया है किन्तु कपिल के सांख्यशास्त्र में आत्मा अर्थात् पुरुष को पञ्चीसवाँ तत्त्व माना है। अतःकरण के संकल्प-विकल्प के व्यापार को मन कहा है। सांख्यदर्शन का प्रधान कारणवाद सभी ने मान्य किया है क्योंकि सत्कार्यवाद आदि की संसिद्धि के लिए उसका उपयोग आवश्यक है। सांख्य के अनेक तत्त्व वेदान्त के तत्त्वों को समझने के लिए आवश्यक हैं। सांख्य में तत्त्व विचारों के विकास की परिपक्व अवस्था दिखायी देती है। सांख्यशास्त्र का 'प्रधान' जगत का कारण नहीं माना जा सकता क्योंकि वह अचेतन तत्त्व है अतः ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किया गया और सेश्वरसांख्य का निर्माण हुआ। चेतन-पुरुष ही ईश्वर है और वह जगत का भी कारण है। उसकी उपासना साधकों को इष्ट फल प्रदान करती है। मन की वृत्तियों का निरोध करके पुरुषतत्त्व का साक्षात्कार सम्भव है। सेश्वरसांख्य ही योग है।

वेद-मन्त्रों का ऋषियों के हृदय में विकास इन चारों दर्शनों के विकास के साथ हो रहा था। वेदव्यास ने वेदों के मन्त्रों का चार संहिताओं में वर्गीकरण करके उन्हें अध्ययन-सुलभ बनाया। इन सभी वेद-मन्त्रों का उपयोग यज्ञकर्म में आवश्यक माना गया। मन्त्रों का अर्थ-विवरण, मन्त्रों का विनियोग, धर्म का स्वरूप, धर्म का अन्तिम फल, आदि विषयों पर जैमिनीप्रणीत पूर्वमीमांसादर्शन आधारित है। वेद का स्वरूप त्रिकाण्डात्मक (कर्म, उपासना और ज्ञान) है। इनमें कर्म-काण्ड का विचार पूर्वमीमांसा-दर्शन में उपलब्ध है। यज्ञयाग से स्वर्ग-प्राप्ति कर्म-काण्ड का पुरुषार्थ माना जाता था किन्तु उपासना और ज्ञान इन काण्डों की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं थे।^{१५} जीव और ब्रह्म इन दोनों का संयोग वेदों का परम पुरुषार्थ माना गया है। इन सिद्धान्तों को ब्रह्मसूत्र में गठित किया गया है और वह उत्तरमीमांसा के नाम से विश्रुत हुआ है।

सेश्वरसांख्य में उपासनाकाण्ड का विचार अतिअल्प है। यहाँ पर ईश्वरप्रणिधान का उल्लेख है। इस दर्शन का अन्तिम ध्येय पुरुषतत्त्व है। जीव, ब्रह्म में ऐक्य नहीं। ब्रह्मसूत्रों का ध्येय जीव और ब्रह्म में ऐक्य स्थापित करना है। विवेक चूडामणि में आचार्य शंकर ने इस प्रकार कहा है कि जीव और ब्रह्म को विवेक से जानो।^{१६}

इन छह दर्शनों में सेश्वरसांख्य पुरुषतत्त्व के दर्शन के लिए मनोवृत्तियों का निरोध प्रतिपादित करता है। महर्षि व्यास ने इस योगदर्शन का खण्डन किया है।^{१७} पतञ्जलि के योगसूत्र का प्रथम सूत्र^{१८} है कि मैं अब योग का प्रतिपादन करता हूँ। अतः ब्रह्मसूत्र में योग का खण्डन पतञ्जलि योग नहीं है। इस विषय का प्रतिपादन मराठी भाषा में प्रकाशित सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'भारतीय मानसशास्त्र' अथवा 'सार्थ-सविवरण पातञ्जल योगदर्शन' में भी इस विषय का प्रतिपादन है।^{१९} इस ग्रन्थ के अभिमतानुसार वेदान्तसूत्रकार बादरायण व्यास के लगभग तीन सहस्र वर्ष पश्चात् आचार्य पतञ्जलि हुए, जिन्होंने योगशास्त्र का संकलन-आकलन किया।



कितने ही अन्य विज्ञों का ऐसा मन्तव्य है कि वेदान्त में पाँच मनोवृत्तियों का वर्णन मिलता है वह पतञ्जलि के योग-सूत्र से लिया गया है।^{१४} पतञ्जलि योगसूत्र में पाँच चित्तवृत्तियों का उल्लेख है, परन्तु यहाँ पर 'मनस्' और 'चित्त' शब्द का अर्थ विचार करना आवश्यक है। सांख्यदर्शन में मन, बुद्धि और अहंकार नामक अन्तःकरण त्रितय हैं। पतञ्जलि योगशास्त्र में मन, बुद्धि, अहंकार और 'चित्त' नामक अन्तःकरण चतुष्टय है। 'चित्त' शब्द पतञ्जलि के योगशास्त्र का एक महत्वपूर्ण तत्त्व है और सांख्य में इसकी चर्चा नहीं है।

पतञ्जलि के योगशास्त्र में भारतीय मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण विश्लेषण किया गया है। व्यक्तिधर्म और समाजधर्म का उत्कृष्ट समन्वय प्रस्तुत ग्रन्थ-रत्न में दिखाया गया है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच यमों का पालन जब साधक करेगा तब वह समाज के अभ्युदय के मार्ग पर निश्चित रूप से ही आगे बढ़ेगा। समाज-हित को सामने रखकर व्यक्तिगत उत्कर्ष के लिए शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान महत्वपूर्ण नियम हैं। इन सामाजिक एवं व्यक्तिगत धर्मों के अतिरिक्त साधक यथाशक्ति एवं यथाआवश्यकतानुसार आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का भी अभ्यास करता है।

समाधि के दो प्रकार हैं—सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात। सम्प्रज्ञात समाधि में 'चित्त' को सूक्ष्म आलम्बन देते-देते केवल मैं हूँ 'अस्मि' इस शुद्ध आलम्बन पर स्थिरता प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। उसके पश्चात् 'अस्मि' रूप भावना का सहज परित्याग होता है और साधक असम्प्रज्ञात की ओर प्रस्थित होता है। इस अवस्था में जीव को अपने तात्त्विक स्वरूप का परिज्ञान होता है। यही आत्म-साक्षात्कार है। योगशास्त्र में इसे 'कैवल्य' कहते हैं। इसके पश्चात् योगी जगत-व्यवहार को साक्षीरूप में देखकर जगत के उद्धार हेतु सात्त्विक कर्म करता रहता है। जीवन्मुक्ति सुख का अस्वाद लेते हुए असत्त्व-भाव से सत्त्वगुणों से सम्पन्न श्रेष्ठ अवस्था में बढ़ता चलता है। योगशास्त्र की यह चरम-अवस्था भारतीय मनोविज्ञान की एक अनमोल निधि है।

विज्ञों का ऐसा मन्तव्य है कि पतञ्जलि योग-सूत्र का चौथा पाद बाद में समाविष्ट किया गया है। किन्तु पतञ्जलि में योगशास्त्र का क्रम विकास सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इस मत का प्रतिपादन करना अति सुलभ हो जाता है। योग का अर्थ चित्तवृत्तिनिरोध है, यह स्पष्ट रूप से प्रथम पाद में कहा गया है। यह चित्तवृत्तिनिरोध समाधि अवस्था में पूर्णता को प्राप्त होता है। अभ्यास और वैराग्य निरोधसाधक साधन हैं। उसका विश्लेषण करने के पश्चात् पतञ्जलि ने समाधि की चर्चा की है। इसलिए पहले पाद का नाम समाधि-पाद रखा है। दूसरे पाद में समाधि-साधन के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार इन पाँच बहिरंग साधनों का उल्लेख है। तीसरे पाद में चित्तवृत्तिनिरोध के अन्तरंग-साधनों का उल्लेख आरम्भ में ही कर दिया है और इन तीन साधनों से ज्ञान और सामर्थ्य का अनुभव इस पाद में विस्तृत किया गया है और इसीलिए इस पाद का नाम विभूति-पाद रखा है। योग-साधना में प्राप्त सिद्धियों का यहाँ स्पष्टीकरण किया है।^{१५} पतञ्जलि ने इन सिद्धियों को उपसर्ग माना है और साधक को कैवल्य अवस्था प्राप्त करने के लिए अग्रसर होने की पवित्र प्रेरणा प्रदान की है। इस क्रम में कैवल्य-पाद का होना अत्यधिक आवश्यक है। कैवल्यपाद में कैवल्य-अनुभव के मार्ग में आने वाली बाधाओं से निवृत्त होने के लिए योगी अनेक शरीर एवं 'चित्त' का निर्माण करता है और अनन्त चित्त-विश्रान्ति की श्रेष्ठ भूमिका की ओर अग्रसर होता है। अन्त में विदेह-मुक्ति पद को प्राप्त कर लेता है। 'पाद' शब्द का अर्थ चतुर्थांश है इससे यह सिद्ध होता है कि योगशास्त्र पादचतुष्टय से ही युक्त है।

कितने ही आक्षेप करने वाले पतञ्जलि के सम्बन्ध में बहुत कम जानते हैं। कितने ही लोभ समाधि, कुण्डलिनी और योग द्वारा प्राप्त कुछ सिद्धियों के प्रदर्शन मात्र को ही योग समझ बैठे हैं। इस विषय की चर्चा यहाँ पर अधिक करना उपयुक्त नहीं है। हम यहाँ इतना ही कहकर अपना वक्तव्य पूर्ण करते हैं—

शूरोऽसि कृतविद्योऽसि—
बुद्धो विद्वद्वरोऽसि च ।
यस्मिन् देशे त्वमुत्पन्नो
योगस्तत्र न ज्ञायते ॥

सन्दर्भ और सन्दर्भ स्थल

- १ तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि यतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद्योगी भवार्जुन ! ॥

—भगवद्गीता, ६।४६

- २ डा. कर्णसिंह के अभिभाषण से ।

- ३ एतेन योगः प्रत्युक्तः ।

—अध्याय १, पाद २ ।

- ४ अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।

—योग १/१२ ।

- ५ अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराज्येया च गृह्यते ।

—भगवद्गीता, ६/३५

- ६ इयं विसृष्टिर्यत आबूभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् तसो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ।

—ऋग्वेद, नासदीय सूक्त, १२६

- ७ कपिलस्य कणादस्य गौतमस्य पतञ्जलेः ।

व्यासस्य जैमिनेश्चापि शास्त्राण्याहु षडेव हि ॥—अद्वैतामोद

- ८ वैशेषिकाः तन्त्रार्थभूतान् षट्पदार्थान् द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष समवायाख्यान् अत्यन्तभिन्नान् भिन्नलक्षणान् अभ्युपगच्छन्ति ।

- ९ सर्वं खल्विदं ब्रह्म ।

—ब्रह्मसूत्र २-२-६७ शांकरभाष्य

- १० देहोऽहमित्येव जडस्य बुद्धिर्देहे च जीवे विदुषस्त्वहंधीः ।

विवेक विज्ञानवतो महात्मनो ब्रह्माहमित्येव मतिसदात्मनि ॥

—विवेकचूडामणि, आचार्य शंकर

- ११ एतेन योगः प्रत्युक्तः ।

—ब्रह्मसूत्र-व्यास

- १२ अथ योगानुशासनम् ।

—योगसूत्र, १/१

- १३ कृष्णाजी केशव कोल्हकर ।

- १४ पञ्चवृत्तिर्मनोवद्व्यपदिष्यते ।

—ब्रह्मसूत्र, २/४/१२

- १५ ते समाधातुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ।

—योगसूत्र, विभूतिपाद, ३/३८

★★★

